साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत ओड़िया कविता-संग्रह

तन्मय धूलि

प्रतिभा शतपथी

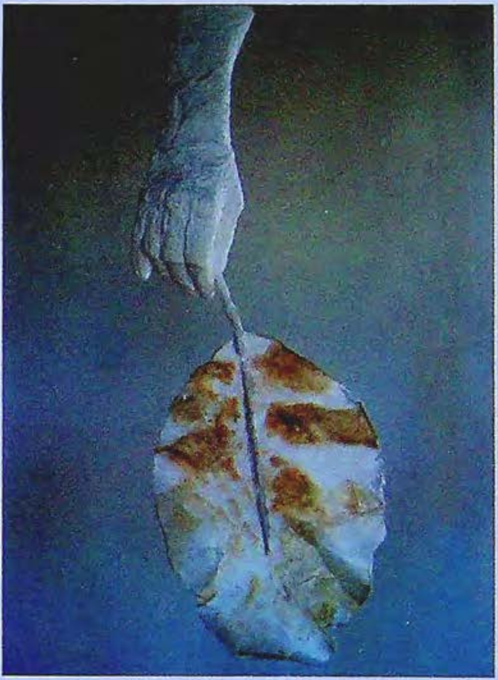

हिन्दी अनुवाद

राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

साहित्य अकादेमी

Digitized by PPRACHIN, SOA

तन्मय धूलि

Digitized by PPRACHIN, SOA

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

Digitized by PPRACHIN, SOA

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत ओड़िया कविता-संग्रह

तन्मय धूलि

प्रतिभा शतपथी

हिन्दी अनुवाद

राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

साहित्य अकादेमी

Digitized by PPRACHIN, SOA

Tanmay Dhuli : Hindi translation of Pratibha Satpathy's Akademi award-winning book of poetry by Rajendra Prasad Mishra. Sahitya Akademi, New Delhi, (2004), Rs. 50

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 2004 ई.

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता 700 053

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई 400 014

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बंगलौर 560 001

चेन्नई कार्यालय

मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443 (304)
अन्ना सालइ, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

ISBN 81-260-1902-6

मूल्य : 50 रुपये

शब्द संयोजक : क्वालिटी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110 093
मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली 110 032

Digitized by PPRACHIN, SOA

अनुक्रम

नायिका	7
शब्दों का जादूगर	9
विनियम	12
केन्द्र बिन्दु में ही....	15
गाढ़ा इंद्रधनुष	17
खींचे लिए जा रहे हो कहाँ	20
शून्य की अधीश्वरी	23
प्रस्फुटित अभाग्य	26
कठोर बंधन	29
नदी	33
भिनसारे में	38
चंद्रालोक	40
सीपी	43
अनधिकार	45
पलातक	50
उजला अँधेरा	53
समझ नहीं पाती सच-झूठ	55
शून्य प्रतिमा	57
प्रगाढ़	59
कल सुबह	62
जाना होगा	65
पूर्णता	67

Digitized by PPRACHIN, SOA

सपने बिना	70
तुम्हें पा लेने का मतलब	73
कौन है उस पार	76
बत्तीघर	78
दस्तख़त	80
सिंहासन	83
चाहत	85
फेंका नहीं जाता	86
ढूँढ़ते हो मुझे?	88
चित्रकार	91
मामूली-सी बात	93
साक्षी	96
सबकुछ चाहकर	98
तो फिर लौट चलें	100

Digitized by PPRACHIN, SOA

नायिका

सुनो,
किसी और के हाथों
कभी नहीं
अपने ही हाथों
भोगती हूँ मैं यातनाएँ
ख़ुद ही बुनती हूँ जाल
ख़ुद ही उलझ-पुलझकर
फड़फड़ाती हूँ।

ख़ुद ही बुला लाती हूँ
बुराई, अपयश
अकुलाहट, हाहाकार।
निष्ठुरता, प्रताड़ना
झूठे आक्षेपों
के आगे कूद पड़ती हूँ मैं
फूट पड़ते हैं पंचप्राण
गलगलाकर बहने लगती है रक्तनदी
बहा ले जाती है थाती मेरी
रक्तनदी की धारा,
फिर भी सूक्ष्मतम परिधान में
अगोरे बैठी रहती हूँ मैं
सिंहासन
निपट रत्नों का।

Digitized by PPRACHIN, SOA

पुरुष,
भिक्षुक, चांडाल
कभी राजेश्वर
तो कभी
ध्यानमग्न संन्यासी बन
खड़े रहते हैं
उस सिंहासन की
निकटतम भूमि पर
स्वेच्छा से।

मैं परम कृपण
मैं चरम दानी,
एक ही बिन्दु पर
समस्या और समाधान
रक्ताक्त घावों से मिलते
अधीर आनंद-सा
मूल्यवान
स्वयं ही लीला
स्वयं ही श्रेयगुण।

नायिका मैं
मुख्या, मैं अनन्या
ध्वंस प्रवृत काल के विपक्ष से
स्पर्धा करती हूँ,
प्रत्येक उच्चारण से, कटाक्ष से
अपनी मुस्कुराहट से, भंगिमा से
आघात से, आह्लाद से
मान से, क्रोध से
यहाँ तक कि
कठोरतम ईर्ष्या से मेरी
लेता है जन्म
एक महाकवि

Digitized by PPRACHIN, SOA

शब्दों का जादूगर

शब्दों के जादूगर हो तुम
या शब्दों के संहारक
यमराज, काल?

कैसे जान पाती मैं
नहीं दिया जा सकता कभी
तुम्हारे सवाल का
कोई भी जवाब
इस तरह अद्भुत तरीक़े से
मुँह फेरकर लौट जाएँगे शब्द...

विभूषिता उत्कंठिता नायिका की तरह
दौड़े चले आएँगे
होंठों की चौखट पर
रुक जाएँगे ठिठककर
काँप रहे होंगे
रुआँसे हो रहे होंगे
पर अपने
अवांछित होने की लज्जा से
आख़िरकार बन जाएँगे
पेड़ या पत्थर।
आज तक तो मैं
नानाविध चित्रित जाल में

Digitized by PPRACHIN, SOA

बाँध लेती थी आसामान को
फिर अपनी मर्ज़ी से
खोल देती थी,
पक्षी की तरह
शब्दों को उड़ाकर अंतरिक्ष-सीमा तक
प्रेषित कर देती थी
अपने विविध अनुभव।
मेरी चेतना की दहलीज़ पर
तुम्हारे किसी सवाल के
दस्तक देते ही
कंठस्थ शब्दों की अर्थहीनता
और उस अर्थहीनता को
गुप्त रखने के लिए
दुनिया के तमाम कौशल
मेरे हाथ लग गए।

शब्दों की
ऐसी निपट चुप्पी उलाँघ
भला कैसे
सामना करूँगी
तुम्हारे अधीर प्रश्नों का?

ओ शब्दों के संहारक
मेरे प्रेमी
मेरे परमकाल
आज बेहद इच्छा है मेरी
एक शब्द उच्चारण करने की
बाक़ी बची आयु के बदले
जो होगा वास्तविक उत्तर,
जिसके बाद और कुछ भी
कहने की ज़रूरत नहीं होगी
लाज से मरना नहीं होगा

Digitized by PPRACHIN, SOA

तमाम उम्र
कहने और न कहने की
दुविधा में
ख़त्म हो जाएगा
मेरे दिशाहीन हृदय का
दंड भोग।

Digitized by PPRACHIN, SOA

विनियम

समय नहीं अब,
तुच्छता को भींचकर पकड़े हुए
निरर्थक कोलाहल में डूबे हुए
वीराने भूल-भुलैयों में
बीत गया जीवन मेरा।
अनदेखे में
फिसल गया कंधे से
नीललोहित उत्तरीय।
नए वर्ण से विभूषित मेरे हृदय की
संगीत लहरी
खुलकर आते समय
आज,
सारे आकाश में
बुझने-बुझने को हो
चिपकी हुई है गोधूलि
अब समय नहीं।

कहो,
कुछ कहो,
देखो,
एक बार देखो,
लो,
नवीनतम

Digitized by PPRACHIN, SOA

अभिषेक की लाल कुमुदिनी
अनश्वर सुगंध जिसकी
भिगो देती है
मेरी हथेली
अब है समय सबकुछ बताने का
एकांत स्नेह को
सौंपने का
जनम-जनम के अफ़सोस
मिटाने का।

अब
अंतिम आनंद-वेदना के
तीव्रतर आँसुओं के जमने का समय है।

बेचारा समय
कुछ रख नहीं पाता सहेजकर
तभी संशय, अपयश की कालिख से
ढँके रहता है मुँह,
कितनी तेज़ी से
आकाश-मार्ग में
धुँधली रेखा-सा
भागता रहता है
क्षण भर रुक जाना तक
नहीं उसके वश में।

देखो-देखो
बाक़ी बचे क्षण
डाल के पीले पत्तों की तरह अस्थिर हैं
पहाड़ की चोटी पर
कतरे भर धूप-सी हड़बड़ी
कहने-कहने को कुछ
कंठ मेरा उत्कंठित, अधीर।

Digitized by PPRACHIN, SOA

आज यदि
शब्दों का अक्षय भंडार
एक बार खुल जाता
मैं चुन लेती
एक शब्द
अंतिम वार।
पृथ्वी की उन्मुक्त छाती-सी
अनावृत अपनी चेतना
अर्थभरे
अनंतकाल
समर्पित कर देती।

Digitized by PPRACHIN, SOA

केन्द्र बिन्दु में ही....

वृत्ताकार पथ में
घूमती जा रही है सत्ता मेरी
जन्म....यौवन.......जरा
मृत्यु......जन्म...यौवन
मैं फेंक देती हूँ
अपना शरीर
चढ़ चुके फूलों की तरह,
फेंक देती हूँ
फिर धारण कर लेती हूँ
वार-वार,
तभी अवांतर है
निश्चितता
मेरे आकार, आवेग, सपनों की।

प्रतीक्षा......प्राप्ति......शून्यता
शून्यता......प्रतीक्षा......प्राप्ति
आँखों में ही
सारी सत्ता का सारांश
समेटे
राह तकती बैठी
उस क्षण की
रुआँसी-प्राप्ति के बाद

Digitized by PPRACHIN, SOA

दिशा-दिशांतर निपट शून्य में
तुम्हें ही खो देना
यही तो है मेरा भोग-अभोग।

समय समयांतर
पसरा होता है
अखंड वर्तमान बन
मैं घूमती रहती हूँ
वृत्ताकार पथ में
घूमती रहती हूँ.....

कौन है केन्द्र विन्दु में
दप-दप जलता है
जलता है......बुझता है
क्या तुम्हीं हो वहाँ
क्या तुम्हीं हो वह केन्द्र बिन्दु?
जो परिधि से
निश्चित दूरी बनाए
स्थिर रहता है हमेशा?

Digitized by PPRACHIN, SOA

गाढ़ा इंद्रधनुष

बारिश हुई
घनघोर बारिश
पूरे आकाश में
एक से दूसरे बादल में कूदती
नाच रही थी बिजली
आग की लकीरें बनाती
जड़ों के नक़्शों-सी।
घोड़ों की टाप सुनाई दे रही थी
आकाश से
ज़मीन से
दंता हाथी ने
सूँढ़ उठाकर
पानी उड़ेला,
बारिश का रहस्य
पूरे जंगल में
बेक़ाबू-सा
फैल रहा था।

घोड़े की टापें थम गईं
शायद कोई राहगीर
कहीं दूर
चला गया।
दंता हाथी सो गया

Digitized by PPRACHIN, SOA

थका-हारा
जंगल की झाड़ियों से
बरसाती पानी की धार बह गई।
वह ऐसा बरसाती पानी है
जिसमें
असंख्य बुलबुले हैं
उन बुलबुलों में
सैकड़ों संचरित परछाइयाँ
इंद्रधनुष की।
डाल-पत्ते पानी की धार
फुसफुसाकर
बतिया रहे थे
कह रहे थे
देखो-देखो
किसी धनुर्धर ने
पहाड़ के उस पार
टिका रखा है
अपना रंग-बिरंगा धनुष
जोड़ने के लिए
पास के पहाड़ से
दूर का पहाड़!

सचमुच यह इंद्रधनुष
कैसे टिका है!
लगातार झरती
अधीर बारिश की बूँदों पर
ठीक तुम्हारी तरह
तुम्हारी तरह रहता है
सत्य का सत
क्षण-क्षण बदलनेवाले इन
स्थान, काल, घटनाओं के बीच
जिस तरह अविचलित, स्थिर रहते हो

Digitized by PPRACHIN, SOA

स्थिर हो जाते हो फिर
माया-सा घेरे रहते हो
बाँध लेते हो मुझे
रंगीन और रंगहीन को जोड़
चेतना की ज़मीन पर
और भी गाढ़ा, स्पर्श करने-सा
एक रूप आँकते हो।

Digitized by PPRACHIN, SOA

खींचे लिए जा रहे हो कहाँ

इधर मेरा घर-बार
और व्यवहार
यों ही पड़े रहे
किस सपने में विभोर
खींचे लिए जा रहे हो ऐसे
छोड़ो मेरा हाथ—

तुम्हारे सपने की धमनियों में
वहता ख़ून
हो सकता है मेरा
सच-सच बताओ
यह पृथ्वी लाँघ जाने पर
किस शून्यता के
सिंहासन पर
ले जाकर बिठाओगे मुझे?

यहाँ तो
मेरे हृदय के
गभीरतम प्रपात में
बेइंतिहा आँसू गिर रहे हैं तुम्हारे
क्षणिक हाहाकार हो तुम
चित्रमय धूल हो,

Digitized by PPRACHIN, SOA

समय के किस बिन्दु पर
मिलूँ मैं तुमसे
मिलते ही कट जाऊँगी
तत्काल,
हो जाऊँगी दो टूक।

परिचित समय के
किसी बिन्दु पर तभी
असंभव है मिलना तुमसे
यह जानते हुए भी
घर-गृहस्थी,
तौर-तरीक़े सब छोड़
किस तरह तैयार हो गई मैं
चलने को तुम्हारे साथ।

सुदूर उपत्यका के सीने पर
नवांकुर शस्य की तरह हैं
अपने एक-एक सपने
ज़मीन पर लकीरें खींच-खींचकर
लिखा करती हूँ मैं उनके नाम
और फिर
सहलाती रहती हूँ उन्हें
नहीं होता जब कोई आस-पास,
मानो सचमुच
जी उठेंगे वे
मेरे सहलाने भर से।

मेरे वदन के
कुछ सबसे भावुक तारों में
फूट उठते हैं स्वर
उसकी लहरें
मँडराने लगती हैं वायुमंडल में

Digitized by PPRACHIN, SOA

कहो, कब वे लहरें
चमकेंगी दिशा-दिशाओं में
तुम्हें छूएँगी,
कितना पानी
कितने आँसू
कितने-कितने
शब्द बरसने पर?

और कब तक
लिखती रहूँगी मैं कविता
वर्णमाला रहित भाषा में
कहो ना, क्यों
युग-युग तक
अपनी जड़ें
पेड़ की जड़ों से बाँधे रखूँगी
क्यों
सब कुछ नकारकर
डग बढ़ा
चली जाऊँ
तुम्हारे साथ
फिर एकाकी
ख़ाली खेत में
एक घास-सी
काँपती रहूँगी—
अपना ख़ून
ख़ुद ही चखती रहूँगी
तुम फिर
हाथ पकड़ बुला ले जाने पर
चली जाऊँगी
दुनिया फलाँग।

Digitized by PPRACHIN, SOA

शून्य की अधीश्वरी

आख़िरी ज़रूरत का
खुलासा करके
वे लोग लौट गए।

ढलती जा रही गोधूलि-सी मैं—
दिगंत की ओर एक हाथ हिलाकर
दूसरे हाथ से
पेड़-पत्तों से माटी से
समेट रही हूँ ख़ुद को।

बस गिरने ही वाला है
जूड़े से अड़हुल
अँधेरे में बुझने लगेगा चेहरा
जब कोई नहीं होगा
सुबह साँझ की व्यग्रता
मुझे खेंचा मार-मारकर पूछेगी
वे लोग
प्रयोजन से गढ़े रक्त-मांस हैं
या स्नेह जर्जर मनुष्य?
मैं कुछ नहीं कहूँगी।
किसी की आँखों में
मैं डूब गई थी कभी
स्वप्न वृक्ष की चोटी में डोलते

Digitized by PPRACHIN, SOA

किसलय से भी लाल
एक तितली उड़ गई थी
मेरे हृदय से!

मैं किस मिट्टी
किस पानी-पवन और तेज से
गढ़ी गई हूँ, कौन जाने,
कोहरे की लकीर-सी तो दिखती हूँ
कैसे दिन गुज़ारती हूँ
रोती हूँ, हँसती हूँ
अक्षर और ध्वनिहीन
भाषा में बातें करती हूँ
कोई नहीं जानता।

वे लोग
मुझे फेंकना चाहते थे
वीरान कोठरी के अँधेरे कोने में
न जाने मैं कैसे
बच गई
सिर उठाकर रहने लगी
भगवान जानते हैं
मैं किस साहस से बातें करने लगी।

ख़ुद को ढूँढ़ने में, पाने में
विजयिनी हूँ मैं
हाथ बढ़ाओ मेरी ओर।

घोंसले में लौटते पक्षी
क्रॉस बना चुके हैं आकाश में
कुछ बह जाने की तरह
काँप उठने-सा
किसी अनजान देश का हिलोर

Digitized by PPRACHIN, SOA

फैल गया चारों ओर
घास भरे अँधेरे फाट में
झिलमिला उठी पानी की बूँद
मुझे तो अब
चुपचाप लौट जाना होगा
उसाँसों से काँपते
पहाड़ और गुफाओं में
जानते हो,
मुकुट और ठाठ
सब यहीं छोड़कर।

Digitized by PPRACHIN, SOA

प्रस्फुटित अभाग्य

हथेली पर उभर आया एक चित्र
हृदय में स्थिर अर्पित
तुम्हारा प्रतिबिम्ब,
देह पर तैर जाती है
तुम्हारी परछाईं
कहाँ है विच्छेद, कहाँ?

आज तो वापस भेज दिया भाग्य को
बोली, तुझसे
अलग रहने का समय जो आ गया
बाट जोहते वक़्त को
संकेत किया
रुको, मिलना ही तो है
अंतिम समय पहुँच जाना
मैं शिकायत नहीं करूँगी
कोई भी।

किन्तु इस दिन-रात
उजाले-अँधेरे, आज-कल रहित
इस महान अनश्वर को
अब नापने मत बैठ, जा—

नए मिलन के इस

Digitized by PPRACHIN, SOA

अंकुरोद्गम के समय
सूर्याभिसारी मेरी
आत्मा से अंग से
रोम-रोम से
एक-एक श्वेत पद्म
इंदीवर रक्तपद्म ने
पंखुड़ियाँ खोले
धड़कनों की तरह काँपने लगा निर्बाध
इधर-उधर भँवरों का गुंजन
सुगंध से डोलती माटी
सारे आसमान में
घुमड़ती आवाज़
निःशब्द और छुपी हुई आवाज़
पंचप्राण पूछ उठे
कौन है? कौन है?

आधा-आधा परिचय
आधा-विश्वास और स्नेह
द्वितीया के चाँद-सी
अधमुँदी आँखें
अधखुले होंठों का गीत
आधी छुपी आधी दिखती
एक मूर्ति
पकड़ते न पकड़ते
आधे से अधिक जिसका
टूक-टूक हो चुका है।

इस दुनिया ने
नितांत अकेले में
मेरी सत्ता को ले जाकर पूछा
तू तो अब मूर्ख नहीं रही
भाग्य से, समय से

Digitized by PPRACHIN, SOA

मुक्त हो
बड़े हो जाने की बात
भला कब से सीख गई?
क्या सचमुच आज से
लाँछन, अपमान
मजबूरियों से तू
मुक्त हो गई?
भाग्य को बना डाला
अपना दासानुदास
या सारे आरोपों से
मुक्त कर दिया
बेचारे भाग्य को
आज से?
समय के सब कुछ
मलिन और क्षय कर डालने के
गुण से छुटकारा पा गई?

ध्यान नहीं दिया उस ओर।
जानती थी, प्रश्नकर्ता
जिस तरह बिलकुल नहीं जान पा रहा
मैंने आज तक जाना है, भोगा है
तुम्हें।

दुनिया की राह में
आम धूप का
नियमित समागम, कोलाहल
मेरी तरह उसने
क़तई नहीं टटोला
इतनी ठंड, इतने अँधेरे में।

Digitized by PPRACHIN, SOA

कठोर बंधन

यह कैसा उजाला है
कैसी रोशनी
खिल उठी मेरी सत्ता में
उग आई कैसे मेरे भीतर!
अपूर्व उदयन में
नख-शिख से मेरे
धार-धार ज्योति अँकुराई—

कैसे वर्णन करूँ मैं
अपने कण-कण रक्त के
अपनी एक-एक कल्पना के
रंग विच्छुरण का—
असंभव उज्ज्वल उस स्फुलिंग की
विपुलता लिए
नपी-तुली इस दुनिया में
कैसे जीऊँगी मैं
कैसे करूँगी आवाजाही?

मानो मुझसे दो अँगुल की ऊँचाई पर
लटका हुआ है आसमान
मेरे अभिषेक का मंत्र
कर रहा है उच्चारण,
क्रमशः मेरी तेजोमय सत्ता

Digitized by PPRACHIN, SOA

मेरे भीतर
छलाँग लगा रही है ऊपर की ओर
दिशा-दिशांतर शून्यता में—

जबकि आस-पास
यह कैसी विकराल छाया है!
बढ़ती जा रही है यह छाया
पैरों तले से
घाटियाँ, जंगल, पहाड़
और रेगिस्तानों से होकर,
रेगिस्तान में घिरी
बारिश की संभावना
टूट जाती है,
पहाड़ की तलहटी में
काँप उठती है,
जानवरों के ख़ौफ़ से भरी भूमि,
घास-पत्तों का
उज्ज्वल हरा चेहरा
पड़ जाता है काला
धान की क्यारियों से भरा
चक़मक़ आँखों-सा पानी
करुण लगता है,
यह विकराल छाया
नदी में, नाले में
नन्हीं-नन्हीं लहरों के
प्रिज़्म तोड़
बढ़ती जाती है समुद्र की ओर
पूरे समुद्र को ढँककर
अपनी उद्दंडता से
डराती है
दिगंत को छूती है
दिगंत से छलाँग लगाती है

Digitized by PPRACHIN, SOA

आसमान की ओर—

उजाले की तमाम लहरें
हुलसित होती हैं
अधिक से अधिक,
सर्प-सी लंवी छाया
क्यों लपलपाती है जीभ?
आतंक, अवसाद से सिहरती
पूछती हूँ मैं
तुम्हारे वहाने
पूछती हूँ पृथ्वी से,
आकाश से,
कौन चिरंजीवी है
कौन सच
कौन है मेरा अपना परिचय
कहो.....।

उजाला या अँधेरा?
मेरी सत्ता के
प्रकाशमय मंडप में
क्यों भीषण विरोध करती है
यह छाया
गरज उठती है
बुझती जाती
जलती जाती...!

कहाँ से जवाब आता है
कोमल कठोर स्वर
सचमुच
आकाश का है
या तुम्हारा?

Digitized by PPRACHIN, SOA

आलोक रत्न से जड़ित
सिंहासन पर आसीन
प्रियतम मेरे,
क्या तुम्हीं कहते हो......
उजाले की सखी अरी,
क्या तू महज उजाले की है
अँधेरे की भागीदार नहीं?

यह उजाला
यह अँधेरा
ये मेरी दो बाँहें
परिपूर्ण आलिंगन की मुद्रा में
घेरे रहें
तुम्हें ही।

Digitized by PPRACHIN, SOA

नदी

अभिनव विस्मरण।
भूल गई
अपना ही गंतव्य।
आकाश से पहाड़ से
किया वायदा
न रुकने का
भूल गई।

मैं कैसे जानती कि
खड़े होगे तुम यहाँ
मूर्तिवत पारावार,
घनी अभीप्सा से नीले
सम्राट
या संन्यासी जैसे
दिख रहे होगे
दिख रहे होगे विचलित, अधीर
अँजुली भरोगे
फिर अनमने हो जाओगे,
रस भरे होंठों-सी
थर-थर जल की अँजुली
उसमें
किसका प्रतिबिम्ब देख
ख़ुद को भूल जाते होगे!

Digitized by PPRACHIN, SOA

अपराह्न थम गया होगा
पेड़-पत्तों पर, तट पर,
छाती मेरी भीग रही होगी
हल्दी पानी से
जल रही होगी लौटती धूप
तुम्हारी सुनहरी देह में!

मैं फिर भूल जाऊँगी
अपना ही परिचय
तुम्हारी ही इच्छा की
प्रतिध्वनि बन
गढ़ती जा रही होऊँगी
और टूटती जा रही होऊँगी!

आए थे तुम
मेरे सपने में एक बार
जब मैं
वेदनाहीन पत्थर की
ओट में
कितने जन्मों से पहले की
अप्रकटित वेदना से
गुमसुम फूटने को थी
वह सपना पुराना नहीं
रोज़ नया है,
तुम्हारी प्यास
नदी की धार ढूँढ़ती
रोज़ नई है
और तुम्हारा
नदी पार करने का संकल्प
लगता था
ख़ूब नया
क्या मैं विरूपा नदी की

Digitized by PPRACHIN, SOA

नीली वेणी हूँ
या महानदी की
गहरी अतल गोद
तुमको पुकारा......
कहाँ है मेरा अंधा भँवर
प्रमत्त हिंस्रता कहाँ है
कहाँ है मेरा
तट लाँघ जाने का झोंक?
मेरे प्रवाह में हैं सिर्फ़ सवाल।
सवाल लहरें बनने पर
तुम्हारी अधमुँदी आँखें
आतुर उदास होंठ
अनुराग-विराग से गढ़ी
तुम्हारी पौरुष-सीमा पर
सिर पटकते थे,
नवोदित चंद्र किरणों के
घने कोहरे में
खो जाती
उसाँसें थीं
तुम्हारे प्रत्युत्तर।

मैंने कुछ नहीं सुना--
झट
क्षय और मृत्यु का
मुकुट पहन
अहंकारी हो बैठे जीवन से
मुँह मोड़ लिया।
तुम्हारी ज़रूरत पर
सत्ता के सर्वांश में
मैं नाव बनी
नाविक भी बनी
तेज़ प्रवाह तक बनी,

Digitized by PPRACHIN, SOA

और बनी
उस प्रवाह को लाँघ
जाने का उपाय।

सारे अतीत
सारे अनागत
उसी एक क्षण में
भूल गई मैं पूरी तरह
कहाँ माटी, कहाँ नाव
कहाँ नदी
कहाँ है पार जानेवाले
लगा, मैं महज़
पूरे जीवन की घनिष्ठता से सराबोर
एक उष्म गोद हूँ
शायद मैं एक लक्ष्य हूँ,
तुम्हारा संकल्प
पूरा करनेवाली
मैं एक निश्चित दिगंत हूँ।

अनजाने, अनसुने
किस नए देश की ओर
खिंची चली जा रही थी मैं
करोड़ों नक्षत्र एक-दूसरे का हाथ थामे
घेरे हुए थे मुझे
अँधेरा-उजाला
छिन-छिन
वश में कर रहे थे
मेरी सत्ता को
अपने प्रभाव से।

तो क्या मैं
कोई घनी सुगंध हूँ
गीत की लहर हूँ

Digitized by PPRACHIN, SOA

जो फैल गई थी
पूरे अंतरिक्ष
या, ख़ुद से अनजान
महज़
एक सेतु
जिसने जोड़ा था
इस पार से उस पार!

विश्व-ब्रह्मांड की
सारी शून्यता
मानो बूँद बन
मेरी छाती पर क़दम रखते ही
अपूर्व प्रसन्नता से
रक्त से भर जाती थी!

तुम्हारी अभीप्साएँ सारी
संकल्प तुम्हारे
पूरा हो जाने पर
मुझे फिर
समाप्त हुए उत्सव-सा
इस दुगुने सुनसान
शरीर को खींचकर
बढ़ जाना होगा
अँधेरे में एकाकी।

जहाँ
तुम्हारा स्वर
कभी फुसफुसाहट-सा
सुनाई देगा
तो कभी
हाहाकार-सा
चीर डालता होगा मेरी छाती को।
....

Digitized by PPRACHIN, SOA

भिनसारे में

किसने पुकारा भिनसारे में
किसकी उष्म उपस्थिति
मांसल पवन के साथ
एकाकार हो
मेरे दरवाज़े पर
दे रही थी दस्तक?

हृदय के तारों में मेरे है
किस स्वर की झंकार
थिरकने लगी थी नस-नस
समुद्र भी गरज रहा था अँधेरे में
चारों ओर मेरी घिर आया था
अथाह अकूल....
या सारा आकाश
बरसने बरसने को हो
रुँध गया था बादलों से!

किसी अनहोनेपन,
गहरे आकर्षण ने
भींचकर पकड़ लिया था मुझे
ख़ाली शय्या के पास
किसकी साँसें पसर रही थीं
किसके इंद्रजाल होंठों से

Digitized by PPRACHIN, SOA

भोर के हरसिंगार जैसे
टप-टप
झर रहे थे शब्द...........
तुम्हारे
या अर्द्धस्फुट
आसन्न भोर के?
शत-शत पद्‌म पंखुड़ियों-सी अँगुलियाँ
भेद रही थीं मेरा रोम-रोम।

Digitized by PPRACHIN, SOA

चंद्रालोक

(1) तालाब

कूड़ा-करकट, कीचड़ भरा
तालाब हूँ मैं
किनारे-किनारे
कँटीली झाड़ियाँ
घुटने तक पानी में
सफ़ेद-सफ़ेद नन्हें फूल
नन्हें-नन्हें बच्चे मेंढक के
घोंघे और सीपियाँ
नन्हीं-नन्हीं मछलियाँ
कुतूहली हवा का नाचना-कूदना भी
नहीं सिहरा पाती
मेरी निस्तब्धता
आसानी से।

कभी-कभार उसमें
बेढंगे पैर डालकर
घूम आता है एक बगुला
सतर्क आँखें अपनी
टिकाए पानी में।

पर दिशा-दिशांतर में बिखरे
चंद्रालोक

Digitized by PPRACHIN, SOA

तुम क्यों झुक आते हो?
झर-झर कर्पूर हाथों से
सहला जाते हो मेरा सर्वांग
न जाने किस माया से
मेरी इस नगण्य छाती पर
आँक जाते हो
स्वच्छ ललित
प्रतिविम्ब अपना!

(2) कर्पूर बरस रहा है

कर्पूर बरस रहा है
मैदान दर मैदान
खेतों पर
वन-वन वृक्ष-वीथि
समुद्र और नदी
तरंग-तरंग
बरस रहा है कर्पूर
भीग रहा है
मेरा पूरा अस्तित्व
सुगंध से।

खुले केशों पर
कपाल पर, होंठों पर
आँखों पर बरसता है
देख नहीं पाती मैं
मृदु कर्पूर झरता है
मेरे हृदय पर।
भला कौन गा रहा है
सुदूर मुल्क में
पेड़ तले झुटपुटे में
आधा भीग रहा है बरसात में

Digitized by PPRACHIN, SOA

कैसा रहस्य घिर आया है चारों ओर....
वाङ्मय में पसरता
यह किसका गीत है
बाँसुरी से उभरता
किसका स्वर
कहीं तुम्हारा तो नहीं?

(3) मधुकुंभ

पूर्व दिशा
अँधेरा अपने निराकार हाथों से
उठाए हुए हैं मधुकुंभ।
टपक रहा है मधु
बूँद-बूँद
पत्तों पर,
पत्तों से मिट्टी पर
धार-तार बह रहा है
भीग रहा है मेरा घर
मेरा आँगन
मधुरंगी साड़ी मेरी सराबोर
सराबोर है मेरा उल्लास
मेरी वेदना
सारी रात झर रही होगी
मधुधार
बीतता जा रहा होगा
मधुर सरस काल
चुपचाप पृथ्वी का करवट बदलना
उँसाँसों से पेड़-पत्ते हिला देना
सुनाई दे रहा होगा,
सुनाई नहीं दे रहे होंगे सिर्फ़
निःशब्द पदचाप
हमारे अस्थिर आयुष्काल के।

Digitized by PPRACHIN, SOA

सीपी

नमकीन पानी के अतल साम्राज्य में
तिमिंगल और उससे भी बड़ी मछलियों के
खुले मुँह के आगे
लाचार, लज्जित
घिसट-घिसटकर
डोलना ही था
प्रारब्ध मेरा।

याद नहीं रहता परिचय समय का।
नदी के ऊपर कहीं
कभी-कभी
दप-दप करता चमक उठता है एक तारा क्यों
लाखों तारों के बीच में
सिर्फ़ मुझे ही
ताकता रहता है वह
या कभी-कभी मैं उसे
अपना समझती हूँ....
मन की सारी निर्वाक् पूजा
उसे ही अर्पित करती हूँ।

सात समुंदर पार से आवाज़ आती है
चल उठ, चलकर देख आकाश की ओर
बिजली चमक रही है मेरे भीतर

Digitized by PPRACHIN, SOA

हथेली से छोटे
तुच्छ शरीर का
अंतस् जाग उठता है
होंठ खुल जाते हैं....

सुदूर
आकाश से उतर रहा था
न जाने क्या था
अपूर्व सुंदर
रस घोल
बिन्दुमात्र सृजन कल्पना
शून्य भी डगमगा रहा था
मुस्कुरा रहे थे ज़मीन-आसमान
अहा, ललित ओंकार में
हिचकोले भर रहा था
समूचा समुद्र!

निकट से निकटतर
अलौकिक बारिश की एक बूँद
आ गिरती है
मेरे होंठों पर
रोमांच के हरितवन की गोद में
विकसित हो छिन में नवयौवन मेरा
अंतःसत्वा हो उठता है
अगले ही क्षण।

Digitized by PPRACHIN, SOA

अनधिकार

(1)

मेरी हेमवर्णी देह
आकाश से झरते
रंग का प्रवाह
तुम्हारा स्नेह
सच है यदि
तो फिर भय कैसा?

आधा स्नेह
आधा भय
रोम-रोम सिहरित मेरा,
किस नूतन रहस्य की डोर
बाँधे रखती है
फिर जुदा कर देती है....

यदि हमारे बीच
और कोई नहीं
तुम और मैं
अन्य कोई नहीं
कुछ नहीं
तो फिर किससे
डरती रहती हूँ मैं दिन-रात?

Digitized by PPRACHIN, SOA

यह नग्न भय का कुहासा
न जाने कहाँ बरसता है
मेरा हृदय
केश, मुख, कटिदेश
भीगता जाता है।

(2)

वह भय मेरे सामने आँक जाता है
तुम्हारे न होने के
वे घातक दिन
जब चाँद, सूरज, बरसात और हवा
जा रहे होते हैं अपनी राह
मैं घिसटती रहती हूँ
असमाप्त शून्यता को ताकती
बिजली की चमक
और इंद्रधनुष की ओर
नहीं ताकती
पैनी हवा की ओर
हाथ नहीं बढ़ाती
आशा की बूँद भर तेज
मुझे बुलाने पर
मुँह छुपाकर कह देती हूँ
नहीं.....

(3)

तुम्हारी गोद में होते समय
गहरा न होनापन
गरज उठता है....

Digitized by PPRACHIN, SOA

क्षितिज पर
किसका अस्पष्ट हाथ
शून्य को हुलसाकर
कहता है नहीं.....
खोने का भय
या खो जाने का भय
कहीं से दौड़ आता है
कीचड़ से बनी दुनिया के भीतर से
रक्तमय राग
अहंकार
प्यासी चीत्कार मेरी
खुल जाती है
तो क्या मैं
नश्वरता पर
सर्वमय अधिकार चाहती हूँ?

(4)

तर्कहीन
अकारण भय को
मैं कैसे संहारूँ
असफल इतिहास के क्रम को
कैसे तोड़ूँ!
भय से लगभग निष्प्राण
अपनी देह से, चेतना से
सारा आवेग निचोड़कर
तुम्हें मैं भींचे रखती हूँ
और भी घना दंश भरकर
आलिंगन में,
तुम्हारी चंदन-तरु देह को
सर्पिणी के समान

Digitized by PPRACHIN, SOA

भींचे रहती हूँ.....
भींचे रहती हूँ
अपनी अवस्थिति
भूलना चाहती हूँ
भूल जाऊँगी तमाम
कमियाँ
अयोग्यता,
पर वे सब
अधिकतर याद आती हैं,
तो क्या मैं
रेतीले रंग की हूँ
रेत से गढ़ी बाँहों से
निराधार प्रियतम
तुम्हें ही
भींचे रखने को
जी-जान लगा देती हूँ?

*   *   *

किसका स्वर, किसकी परछाई
कौन किसे
विदा करता है
कौन किससे
दूर चला जाता है
जीर्ण दर्पण के
धुँधले प्रतिबिम्ब-सा कभी
कभी टूटे महल की
खंड-खंड प्रतिध्वनि-सा
सुनाई देता है
दिखाई देता है....सुनाई देता है।

यह किस रहस्य का घेरा है!
तुमसे अलग

Digitized by PPRACHIN, SOA

रहने नहीं देता मुझे
पर तुम्हारे
क्षणिक सुंदर शरीर से जुड़कर
रहते समय
मुझे खींच लेता है....
विवस्त्र दिगंत में झिलमिलाते सर्वोत्तम आकारहीनता की
ओर
इशारे से दिखा देता है
मैं ताकती रहती हूँ अभिभूत
तुम हो जाते हो
माटी और आकाश
और फिर
जल और अनल
रूप और सुगंध।

तभी
मेरे रक्त में
जन्म लेता है एक अनुभव
उसकी देह नहीं
विवशता नहीं
कैसी भी कोई माँग नहीं
उस अनुभव से
अभिषिक्त आवेग मेरा
तुम्हारे दूरतम सान्निध्य को
भींच लेता है
फिर अनश्वर
तुम्हारी शून्यता की
आराधना करता है।

Digitized by PPRACHIN, SOA

पलातक

तुम नहीं लौटोगे।
नहीं झाँकोगे
मेरी आँखों में...
तुम्हारी आगे बढ़ने की राह में
जला करती थी जो कभी
दीप बन।

पुराण, इतिहास, समाज
पहचानते हैं
रीति पलातक की।

नहीं माँगी तुमने विदाई
आकाश में
खोए तारे की तरह,
नदी में
खोए तारे के
खोए प्रतिबिम्ब-सा
अदृश्य हो गए।
चाहा था शायद
तोरण सजे
फूलों के हार जैसे,
आशाएँ मेरी
जीने-जीने को हो

Digitized by PPRACHIN, SOA

झड़ जाएँ क्रमशः मुरझाकर।
परंतु
जंगली आग की माला-सा है
हृदय तुम्हारा,
तमाम चाटुकारिताओं की ओट में
वाष्परुद्ध स्वर तुम्हारा
कितना मधुमय है!

*   *   *

साँय-साँय करती हवा
टकराती है शून्यता से
किसका अट्टहास चीर डालता है
हृतपिण्ड
चकत्ते-चकत्ते साँस और ख़ून
जम जाते हैं
धातव पलकों पर।

क्या तुम
आप-पास छिपे शिशु हो
पुकारने पर
नहीं मिलता उत्तर तुमसे?
या तुम हो
कोई और विधाता
जो
सृष्टि के साथ फेंटता है
प्रलय को?
या सृजनबेला की
घनी आकुलता तुम्हारी
फट चुकी होती है
संहार के समय?

निःशब्द में टूट जाते हैं

Digitized by PPRACHIN, SOA

पेड़-पौधे पहाड़
टूटकर गिर पड़ता है आसमान
वसुधा पर
न जाने कौन एकाकी
टटोल रहा है महज़
परछाईं को पकड़ने
तैरता रहता है कोहरे में!

अर्जन वर्जन के संधिकाल में
लोभ की बलि-बेदी पर अधीर
भाग जाता है कौन कहाँ से?
घर से या गुफा से
सत्य से या स्मृति से
त्राहि माँगता है
प्रेम से या फंदे से?
तुम तो भागते फिरते हो
ख़ुद से
त्राहि माँगते हो
स्वयं की सृष्टि से,
इतिहास से।

पलातक!
कहीं भी रहो
युद्धभूमि में
या सिंहासन पर
या किसी नारी की बाँहों में,
तुम्हारी राह में
बनी रहे छाँव
बरसते रहें फूल सदा।

Digitized by PPRACHIN, SOA

उजला अँधेरा

पहाड़ की घनी परछाईं
घिर आने पर,
आधी रात को घोंसले में
डैनों की ऊष्मा
आहिस्ता हिलकर टूट जाने पर,
कहीं भी कोई न होने पर
न जाने कौन दिख जाता है
आस-पास?

खंड-खंड हो
टूटते रहते हैं
उसके अवयव, मुँह
घुल जाता है उसका स्वर
उसके होने का अहसास
सचमुच नहीं कर पाती मैं
विवस्त्र सादगी
क्या तू वही है
वज्र बन, निस्तब्धता बन
झरने की उद्दामता बन
ख़ून की
गति बन, छंद बन
लौट आती है मेरे पास।

Digitized by PPRACHIN, SOA

न जाने कौन
हाथ बढ़ाता है, रुक जाता है
बारिश या कुहासे में
भीगकर
पृथ्वी को
नींद से जगाता है
कहता है
क्या कुछ कहता है कानों में उसके....
बिन धुली नाली-सी
दुर्गन्ध आने लगी देह से
दुर्गन्ध आने लगी
बेशर्त समर्पण से
पुरुषाकार की शपथ से
लोकाचार से
मर्दानगी के अहंकार से
यह दुर्गन्ध
आक्रांत कर डालेगा इस बार
सारा परिवेश
मेरा इहकाल।

तब भी द्वार खुला रखती हूँ मैं
पर्दा हटाकर पकड़े रहती हूँ,
रात को
मुक्त कर देती हूँ
उसके परिचय से
दृष्टि डालती हूँ दूर तक
लगभग
असंभव की ओर।

शायद
कुछ चमक उठे सामने
सबसे आख़िरी सपने के
उजले अँधेरे में।

Digitized by PPRACHIN, SOA

समझ नहीं पाती सच–झूठ

समझ नहीं पाती सच-झूठ।

आधे सपने से जगकर
टटोलने लगती हूँ अहंकार
गीला लगता है
रक्त लग जाता है सारी अँगुलियों में

तरह-तरह के मारणास्त्रों से सज्जित
अपरिचित घटनाओं के
आक्रोश को
रोक लेती हूँ बाएँ हाथ से

माटी के नीचे जड़ों-सी
उलझ जाती हूँ आलिंगन में
परंतु
'अपना' नहीं कह पाती माटी को।

कितने सवाल हैं
सच-झूठ के
संकट के, सिहरन के
दे दो, दे दो की चीत्कार
मैं तो राजकुमारी हूँ
उज्ज्वल क़लम की तलवार से

Digitized by PPRACHIN, SOA

चीर डालती हूँ नीरवता को
पर्त दर पर्त के खोल से
आकर्षित कर लूँगी सोचती हूँ
जवाब उस बात का,
अनंत भंडार शब्दों का
कहाँ होता है? किस गहराई में?
साड़ी से झाड़ लेती हूँ
तमाम चाँदनी फूल
जूड़े के नीचे से
खोल देती हूँ निर्झर
कंगन उतार साड़ी खोलकर
फेंक देती हूँ
चूहों के बिलों से भरे
कमरे में,
समय को
पुकार-पुकार कर कहती हूँ
जा, कुतर ले जाकर
सारा का सारा शस्य
चेहरे की उर्वरता से
मैं तो अब
जवाब तलाशती हूँ
तमाम दिन, तमाम रात
शून्य के एक-एक कोने में ढूँढ़ती हूँ
आकाशगंगा को झुका लेती हूँ
हाथ डालती हूँ
बादल की जेब में
पुकारती हूँ
आ, पकड़ में आ जा—
कुछ कहने की सोच
डबडबाया आसमान
बरसने लगता है—।

Digitized by PPRACHIN, SOA

शून्य प्रतिमा

खिड़की से
झाँकते
पेड़-पौधों को
झिड़कते हुए बोली
उस दिन
चलो हटो
देख क्या रहे हो
बड़ी मुश्किल से बिताती हूँ मैं रात
छाती पर पत्थर लादे घुटन सहते
काश तुम
बाँध लेते कुछ हवा
डाल-पत्तों की जाल में।

क्यों? भला क्या कष्ट है तुम्हें
अब खुलकर कह दूँगी मैं।
न जाने कौन लिख गया
दो पँक्तियाँ
मेरी पलकों पर
कि मैं ही गढ़ूँगी
एक सजीव प्रतिमा
शून्य के औरस से सु-रस निचोड़
देह देकर, त्वचा देकर
शब्दों की गहरी नींद तोड़

Digitized by PPRACHIN, SOA

उन्हें सक्रिय कर
असंख्य विडंबनाएँ गूँथकर
मैं ही बढ़ा दूँगी सुनहरा अवसर
अपना ख़ून उड़ेल रही होऊँगी
दलदल में.....
छाती में इतना बड़ा आईना रखे
लाखों भाव भरे
बिम्बों को सहेज
इतनी लंबी राह चल रही होऊँगी—।

Digitized by PPRACHIN, SOA

प्रगाढ़

रिश्ता
पहने होता है
निहायत मख़मली पोशाक।
कुकुरमुत्ता निकली लकड़ी के
ठेंगुर*-सा
लटका होता है गले में
चूहेदानी में
तड़पता है चूहा।

नैवेद्य
बिखरा होता है इधर-उधर
उसाँसे बींधती हैं माटी को,
हाथ बढ़ाकर घिसटते हुए भी
नहीं पहुँच पाती मैं
देवता के चरणों में।
शायद
नहीं पहुँचा जाता कभी कहीं
किसी सपने में।

चीरता रहता है
सारी रात

---

* गाय के गले में बाँधा ठूँठ

Digitized by PPRACHIN, SOA

अभिसार का चाक़ू
नीरवता को
विकराल आदमी से संभोग में
जल जाता है शरीर
उम्र के साथ आँसू
टप-टप झरते समय
सूर्यास्त से सूर्योदय तक
उठाए रहती हूँ मैं हाथ
सच-झूठ की सीमा पर।

कभी-कभार
न जाने कहाँ से
उड़कर आ जाता है
सरस शब्द-समूह
बैठ जाता है आहिस्ता
पंख दबाए
होंठ, आँख, कान, छाती
पूरी तरह लाल पड़ जाती हूँ मैं।

* * *

भर-भर अँजुली
स्नेह उड़ेलती हूँ आग में
होंठ नहीं काँपते, नहीं खुलते
भरी गगरी टूट जाती है
रेत की ढेर पर।

कई हाथ हैं प्रताड़ना के
लाल, नीले, सफ़ेद, बहुविध
स्वच्छ सरोवर के लहरों-सी
अधपहचानी दो आँखें
ताक रही हैं
सुबह के

Digitized by PPRACHIN, SOA

न जाने किस कोने से?

आयु से
कणभर रेत निकल जाने पर
गिर पड़ता है समुद्र
पहाड़ के उस ओर से
ठंडी हवा फलाँगती आती है
पकड़ लेती है मुझे भींचकर
प्रगाढ़।
धूसर बादल की दीप-दानी पर
दीपक जलाकर रख दूँ मैं
कहते हो
अभी से?

Digitized by PPRACHIN, SOA

कल सुबह

पानी पर पानी
झूम उठा है मतवाला-सा
आकाश में
न धूप है, न बादल, न आँधी
सूचना तक नहीं
किसी की।

यदि मैं नाव हूँ
यदि मैं नाविक भी हूँ
यदि मैं साधनमात्र हूँ
लक्ष्य का,
कल
यदि मिल जाए लक्ष्यपथ
अगली सुबह
मेरे सपने से, कल्पना से
साधना से
अलग हो जाएगी निश्चित
कैसे मिलूँगी
मैं उससे?

सुबह सिर उठाए होगा या नहीं
सूर्य,
सारी रात

Digitized by PPRACHIN, SOA

पानी की चट्टान पर
थेइ थेई नंगा
नाचता डरपोक
नाव की परछाईं में
यदि छुपा बैठा होगा
यदि सपने की मुलायम जड़ें
रुक जाएगी रेतीले विस्तार में
आँखों की रंगीन सीपी से
लुढ़क गई होगी कल्पना
न जाने कितने पतंगे
समझभरी गुनगुनाहट करते
आसमान कँपाते
लौट रहे होंगे
हाट निपटाकर कुँज में।

दीमक लगे
आशाओं के संदूक से
निकल रहा होगा उनचास पवन...
वणिक की अँगुलियों की फाँक से
गिरकर
लोट रहा होगा धूल में
मेरा शब्द जड़ा रत्नहार।

एक तारा कूदकर पानी में
घुलकर मिल जाएगा
मँडराएगा दिग्वलय में
एकाकी पक्षी,
न जाने किस पार से
सुनाई दे रही होगी
सब कुछ खो जाने-सी पुकार
मेरा नाम तो मिट चुका होगा
कब का

Digitized by PPRACHIN, SOA

पतवार झाड़-पोंछकर ले गया होगा क्रमशः
पानी की चट्टान से।
पर मैं खड़ी रहूँगी इसी तरह
लहरों पर नाव
मार्बल के पंख पसार
बह रही होगी
मानो हो राजहंसिनी!

कल सुबह के साथ
जिस तरह भी मिलूँ मैं
राजरानी या
भिखारिन के वेश में
देना ही होगा पर मुझे
जो नहीं दे सकी तुम्हें,
कल सुबह।

Digitized by PPRACHIN, SOA

जाना होगा

मधुरतम असफलता
दे गई बुलावा कल मुझे...

मिट्टी तोड़कर
निकल आया है कोआ आम का
उफनकर बह रही है
क्षणिक सुंदर प्रतिश्रुति
स्वरों से एक मूर्ति
गढ़ी जा रही है तो
सहसा टूट जाती है खंड-खंड
अणु-अणु स्वर
तैरता है डूबता-उतराता है
हिचकोले भरते मेरे रक्त-प्रवाह में।

अन्यमनस्क हो जाने
और न हो जाने की अधीरता का
उड़ा चुकी हूँ मज़ाक़
न जाने कितनी बार
शहद चाटा है
रसशिक्त हथेली से
फेंक नहीं पाई महक
माया-माया कह चिल्लाई हूँ
कभी आकाश से तो

Digitized by PPRACHIN, SOA

कभी समय से टिककर
सारी रात बिताई हूँ।

इसीलिए
हाँ-ना लाज़िमी है
जाना-न जाना
एक-सा है मेरे लिए,
छिन में
चौदह भुवन में बिखरी
मैं अगले ही क्षण
सिमट आई
एक ही स्पंदन में

*   *   *

तो भी
पुकारने पर उसके
मिट जाती है राह
कल तक जिसे
पार करती आ रही थी मैं,
मिट जाती है
शनि-चंद्र विष योग में उलझी
मेरी भाग्य-रेखा,
गिर जाता है
तथाकथित सफलता का मुकुट।

क्या जवाब दूँगी, पूछते हो?
फ़ुर्सत कहाँ।
हड्डियों के मलिन चाँदी के आभूषण
रफ़ू की हुई रक्त-मांस की रेशमी साड़ी को
माँजने-सँवारने तक की भी
फ़ुर्सत नहीं।

बस, जाना होगा मुझे तुरंत।

Digitized by PPRACHIN, SOA

पूर्णता

बित्तेभर समय को पूर्णता देने
काट चुकी हूँ अपने नाप से
सूर्य, चंद्र, आकाश, माटी
पेड़, लता, नदी, हवा को।

अंतिम स्पंदन
रुकने से पहले
उठाए हुए हूँ अँगुली पर
सपने के भ्रूण को,
घर के पिछवाड़े पीपल की
सबसे ऊँची टहनी पर
टाँक दिए मैंने पिन से
दो-चार तारे
एक ही शब्द में सही
कह चुकी हूँ 'अलविदा'
चली आई दूर तुमसे।

एक सुगोल पूर्णता को
टटोलते-टटोलते
उठा लाई कहीं से
एक स्वाद
संताप के बोझ से
झुक आए डैनों को

Digitized by PPRACHIN, SOA

थपकी देकर धकेल दिया
आकाश-दर-आकाश कुलाँचें भरने को।

हर इंसान को
एक ही साँचे में ढाल दिया
मेरे अपने ही साँचे में।
निपट आकारहीन
वर्णमाला लेकर
सजा चुकी हूँ कविता
कितना मुँह फुलाया है
रूठी भी हूँ
जमी हूँ ओस-सी
माटी पर
उकेरी है उसकी उर्वरता
शब्दों में जड़ें आईं या नहीं
तलाश रही हूँ।

स्याही की क़लम ले
कर आई दस्तख़त
स्वर्ग की पलकों पर,
कुछ मिला या नहीं
नहीं रखा हिसाब कभी।

कुछ तो चाहती हूँ ज़रूर मैं
नहीं, अलग से
मत सोचो कुछ,
मत करो कल्पना
सुगोल परिपूर्णता नहीं है
यहाँ कहीं।

यदि मैंने कुछ चाहा है
पाया भी है

Digitized by PPRACHIN, SOA

खंड-खंड स्वादों में
निस्तब्ध कवितांश में
स्वप्न के भ्रूण की सजीवता में
मैं ही
जुटी हूँ उसे भरने....।

Digitized by PPRACHIN, SOA

सपने बिना

कोयल दिख नहीं रही
पर कूक उसकी
कैसे घुस आई
ट्रेन की छुक-छुक थकान को
तोड़ती-फोड़ती,
मैंने तो
छुपा लिया ख़ुद को।

मिटा डाला अस्तित्व
लिखा तो था नाम बादलों पर
पिघलकर वह गए नदी में बादल...

किसने आँक दिए
पेड़, पत्ते, पहाड़
अट्टालिका
खिड़की पर
तुम्हारी स्मृति
खड़ी हो जाती है आकर
ठीक तुम्हारे जैसा आवेग लिए
तुम हो स्मृति
या वर्तमान
या त्रिकाल का आश्वासन
समझ नहीं पाती।

Digitized by PPRACHIN, SOA

प्रश्न करती अँगुली से
अँधेरे का घूँघट उठाए रखती हूँ मैं
जब सभी सो जाते हैं
किसी अनजान देश की हवा
मेरी राह रोकती है
बिस्तर से संघर्ष करती
ढूँढ़ रही थी मैं
कभी पा जाती, खो देती, पा जाती
बार-बार
ध्रुवतारे को छू लेती।

भौंहों के बीच एक लकीर
तकदीर मेरी
अपने ठंडे कठोर आक्रोश से
मानो एक कीड़ा बना दिया मुझे
अभिमंत्रित धूल फेंककर...
आम धागे के टुकड़े से
बाँध दिए
हाथ-पैर मेरे
मानो
आज मैं नहीं हूँ
न कभी थी...।

इस बड़बोलेपन पर
आती है मुझे हँसी।
मेरे पैरों तले तो
घास है, पानी है
भला मैं कैसे न होती?
मेरी साड़ी की सिलवटों में हैं
लहरें महानदी की
मेरी कंठी माल में
एक-एक तारा

Digitized by PPRACHIN, SOA

मेरे गीतों में
स्नेह है, आँसू हैं
भला मैं दिखती कैसे नहीं?

कितनी दौड़-धूप रहती है
प्रतिष्ठा की ओट में
मुझे हँसी आती है.....
अपने इस तरह
छुप-मिट जाने के बाद ही
छूती हूँ मैं ध्रुव तारे को
बिना नींद, बिना सपने के।
....

Digitized by PPRACHIN, SOA

तुम्हें पा लेने का मतलब

उनका कहना है
मैं पा चुकी हूँ
क्या सचमुच
पा चुकी हूँ मैं तुम्हें?

तुम्हें पा लेने का मतलब है
उस पार जाना
शरीर को
ढँक लेना रहस्य से
आत्मा से पोंछ डालना
सारा का सारा कोहरा
बेले की माला से सजा लेना
अंतःस्थल।

सचमुच
मैं लाँघने लगी हूँ सारी सीढ़ियाँ
एक-एक कर सहजता से
आगे की या ऊपर की
उतरी भी हूँ सीढ़ियाँ
पीछे की या नीचे की
समझ नहीं पाई
कोशिश भी नहीं की समझने की
वजह किसी संशय की,

Digitized by PPRACHIN, SOA

विश्वास ही विश्वास में
कैसे गुज़र गया खाँय-खाँय
दोपहर मेरा।

तुम्हें ज़रा छूने के लिए
अनेक चौराहों पर
खड़ी हुई हूँ देर तक
सही है मैंने छिछकारियाँ
सहे हैं चोट
आत्मा और शरीर दोनों
दप-दपाकर जल उठने पर
जिलाए रखा है ख़ुद को।

पूरे आसमान में
दौड़ आई अकेले
बादलों को चीर डाला नाख़ूनों से
तारे को लॉकेट बना लटकी रही ख़ुद
अर्थ के गले में।

अर्थ के गले में
लटकने का मतलब है
सपने देखना
सपनों को सच समझना
अधखुले भिनसारे में
अपनी
सिसकियों भरी छाती को सहलाना।

क्या देखकर
न जाने क्या पढ़कर
क्या-कुछ सुनकर
मान बैठे हैं वे कि
पा चुकी हूँ मैं तुम्हें।

Digitized by PPRACHIN, SOA

कोई जाने या न जाने
मैं तो जानती हूँ कि
तुम्हें पा लेने का मतलब है
गद्‌गद् सिहरण
शब्द और अर्थ खो बैठना
रक्त से सराबोर हृदय को
फेंक देना सड़क पर
तुम्हें पा लेने का मतलब है
पूरी चुप्पी
मुँह बिलकुल वंद।

Digitized by PPRACHIN, SOA

कौन है उस पार

कौन है उस पार?
बेइंतिहा अँधेरे से लदी
रेंग रही हवा
साँस लेना कष्टकारी यहाँ।

तेज़ प्रवाह
मेरे सीने का
गहराई में चोट कर रहा,
काट रहा,
रक्त इतना कि
हाथ-पैर सराबोर हैं।

टूटकर गिर पड़ा मिट्टी पर
कवि का सपना
धूल-धूसरित भयावह।
फिर भी बचा है अभी तेज...
बचा होगा।
धूल में
एक नन्हा कण
खिला है सजीव झिलमिल
कहते हो वह है तेज मेरा...
हो सकता है।

Digitized by PPRACHIN, SOA

उस तेज से
क्या जाग उठेगा सहसा
लगभग दस साल पहले
मर चुका मेरा प्रेमी?
उबले अंडे के दो भाग-सी
आँखों में उसकी
फैल चुके होंगे अनोखे सपने...
उस तेज से
क्या लाल पड़ जाएँगे पेड़-पौधे,
पिघलकर बह जाएँगे रास्ते-घाट
पसर जाएगी कटु मुस्कान
आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक?
क्या फट जाएगा
विशुद्ध अहंकार
उस तेज से?

मैं हाथ बढ़ा दूँगी।

कौन है उस पार?
घुप्प गीला अंधकार...
अंदाज़ नहीं पाती कुछ!

Digitized by PPRACHIN, SOA

बत्तीघर

स्मृति सशरीर होती तो
तुरंत धकेलकर
हटा देती उसे
सामने से मैं।

सामने खड़ी हो जाती है वह
विभोर दृष्टि की दुग्ध धार
रस की सहस्रधार बहाकर
डुबो देती है
मेरा अस्तित्व।

अतीत, वर्तमान, भविष्य
नहीं होता किसी का
परिचय कोई
कोई प्रवाह
कितने दुःसंवाद, रक्तपात
हाहाकार...
फूलवन के उद्वेलन में
उत्कंठापूर्ण संघर्ष
सूखी जड़ों की
मुस्कानभरी हानि-लाभ की बातें
कितने नाम, कितने आडंबर
चाटुकारिता के सिंहासन पर

Digitized by PPRACHIN, SOA

मेरा महारानीपन
किसी की कोई विशेषता नहीं होती।
सिर्फ़
उस दृष्टि की
विरल रसधार से
मूर्च्छित मैं
होश खो बैठती हूँ।

समय बन जाता है
पत्थर की चिड़िया
जड़ें काँप उठती हैं
माटी के नीचे,
पहाड़ की तलहटी में
दूब पर
सुबह की ओस-सी
ढुलमुल होती है पृथ्वी...
मैं जीती-मरती
लेती हूँ पुनर्जन्म
न जाने कितनी बार...।

किस बारिश और आँसू
और शब्दों के प्रवाह में
तैर रही होती हूँ मैं
तैर रही होती हूँ।

Digitized by PPRACHIN, SOA

दस्तख़त

नींद अथवा मौत
कौन-सा सोपान है यह अभ्यंतर का
या एक क्षण में है यह
साथ-साथ
भोग-अभोग जीवन और मृत्यु के?

इस घड़ी मैं
पाताल में हूँ स्वर्ग में हूँ
छिन-छिन फैल जाती हूँ
विजली की रफ़्तार-सी
उजाले की लहर-सी
मृणाल के मज्जे में
एक कंपन हूँ मैं
आकाश में व्रज बन पुकारती हूँ
गुफा के भीतर
घिरा अँधेरा हूँ
शिखर पर
प्रकाश उत्स बन
फूट पड़ती हूँ।

कहाँ हूँ मैं, मत पूछो
कहाँ हूँ मैं, उसकी निर्दिष्टता
नहीं कोई...

Digitized by PPRACHIN, SOA

सुख-दुःख एक बिन्दु में
दाना वन जाने पर
देह शून्य हो जाने पर
पवन को शरीर मिल जाने पर
अस्त-व्यस्त नदी
मुहाने में थम जाने पर
कोई आघात कभी
स्वीकृत न होने पर
तुम मुझे पूरी तरह बाँधकर
पूरी तरह मुक्त करने पर
खो जाती है निर्दिष्टता
परम मूकत्व घिर आता है
खो जाता है उच्चारण
चंपा-फूल के पराग से पुता
तुम्हारे सीने का स्वर बजता है यहाँ
रोग यंत्रणा घाव के
आवर्त के बीच
गुनगुनाती पंक्तियाँ कविता की
बातें करती हैं
नए-नए पवित्र अर्थ
मेरी रक्तकणिका में लिखती हैं
फिर तुम्हारे सीने के
नीड़ में मैं
एक शुभ्र चिड़िया
ऊँघने लगने पर
तुम आकाशगंगा बन
आकाश को
एक सिरे से दूसरे-सिरे तक
जोड़ देने पर
ओस की आँखें मैं
रुकी रहती हूँ
पंखुड़ियों के छोर में...

Digitized by PPRACHIN, SOA

मैं फिर बदल जाती हूँ
शून्य बन जाती हूँ...
शून्य से देह पाती हूँ
कालसर्प से डसा जाना
धर्म नहीं उस शरीर का
वह शरीर
नक्षत्र की अँगुली के टीप
के समान आभा-सा
पुष्प वृष्टि-सा
बिखर जाता है वसुधा पर।

रत्नमय मेरे गर्भ की
अनेक इच्छाएँ, संकल्प
एक ही तेज बन
जीवन पा जाने पर
ख़ुद ही वह जीवन बन
मैं फिर से उस जीवन की
जननी बनने पर,
अँजुलीभर मिट्टी के पेट में
एक कटी डाल में
अंकुरित गीत,
सरस शरीर के अभ्यंतर में
नन्हें रक्तमांस की धड़कन
हर जगह
समस्त सजीवता के मातृत्व में
मैं दस्तख़त करती हूँ।

Digitized by PPRACHIN, SOA

सिंहासन

सिंहासन ख़ाली रहा
रुक गए वे लोग
सीढ़ियों के नीचे।

सिंहासन बत्तीसी की
अदृश्य पुतलियाँ
प्रश्न नहीं कर सकती यहाँ...
उसका ललित मुख
पर्वत उरोज
जानु भंगिमा
स्वर और कुतूहल की
कल्पना ही अवांतर है...
राजकुमार तुम तो रुक गए
इस सिंहासन की
हीरा जड़ित कारीगरी
तुम्हारे लिए है...
आओ, बैठो।
यह सही है कि सिंहासन जल रहा है
लालच और झूठ को
जला डालनेवाली आग है
पर डरो मत,
बहाना मत बनाओ,
क्षण में सफ़ेद, क्षण में काला

Digitized by PPRACHIN, SOA

न पड़ जाए तुम्हारा मुखमंडल
राजकुमार,
सिंहासन है वीरों का।

अभिषेक में, प्रेम में
अधिकार नहीं कापुरुष का।
सच-झूठ, न्याय-अन्याय भरे
प्रश्न करो अपने से
जलना भीगना है एक-सा
जिस शरीर का
अपना लो उसे।

बत्तीस बार नहीं
सहस्र बार रखो हाथ
हृदय पर
छुओ उसके उच्चारण
निर्वस्त्र कर दो विलासिता
राजपथ पर
हृदय का बुद्धि का हाथ थामो,
अहंकार की पोशाक
उतार दो, सुपुरुष
आओ, बैठो
सिंहासन पर...

Digitized by PPRACHIN, SOA

चाहत

बूँद भर चाहत
स्वीकार करने को उस दिन
तैयार नहीं हुआ आसमान
धँस गई माटी
झड़ गए हरे पत्ते
पेड़ों से
डरे-सहमे पक्षी-समूह
उड़कर गए कहीं
समुद्र भी राज़ी नहीं हुआ
नकार दिया उसने...
गरज उठे लाखों हत्यारे
लाखों चाक़ू...

और आज पूरी दीवार पर है
धातव चिड़ियों की बातचीत
प्लास्टिक के डाल-पत्तियों की हरियाली
जहाँ है प्रयोजन सिर्फ़
निर्लज्ज गरज
नपा-तुला लेन-देन
वहीं है शोर-शराबा
चाहत, चाहत का... ।

Digitized by PPRACHIN, SOA

फेंका नहीं जाता

कुछ भी फेंककर नहीं जाया जाता
यहाँ तक कि
मोती निकालकर
तोड़ी हुई सीपी भी।

हाथ पकड़कर साथ चलती
राजकुमारी को छोड़कर
नहीं जाया जाता जंगल
आधे वस्त्र में,
वरना करना पड़ता है प्रायश्चित्
मुँह छिपाकर घुड़साल में।

कोई भी रिश्ता नहीं तोड़ा जाता
शत्रु भी आते हैं याद
बार-बार
एक खिंचाव
एक आकर्षण
होता है शत्रुता का भी।

यहाँ तक कि फल से डंठल तोड़कर
नहीं फेंका जाता
यहाँ-वहाँ
फेंकने और छोड़ जाने की

Digitized by PPRACHIN, SOA

एक निश्चित जगह होती है,
इसीलिए
फेंकी जाती है आम की गुठली
खाद की ढेरी पर
इधर-उधर नहीं।
लेकिन जिस तरह तुमने मुझे
अचानक झटककर
फेंक दिया गोद से
बीच रास्ते पर...
नहीं फेंक सकता इंसान
उस तरह
अपने शत्रु को भी।

Digitized by PPRACHIN, SOA

ढूँढ़ते हो मुझे?

ढूँढ़ रहे हो मुझे
पुकार रहे हो लेकर नाम मेरा
हज़ारों मुँह से
यह साबित होने के बावजूद
कि मैं नहीं हूँ यहाँ?

सिंहासन से
पार्षदों, चाटुकारों के मुँह से
लाखों तूर्यनाद से
जयघोष से
मेरा नाम तो
नहीं हुआ उच्चरित कब से
दबा पड़ा है कहीं
विस्मृत गहराई में।

नहीं पहुँची
यह ख़बर तुम तक?
लाखों मुँह में
नहीं समाता अब मेरा नाम
बाध्य बाधकता की अँगुलियों से
यदि उठा ले कोई कभी,
मेरा नाम
गिरकर

Digitized by PPRACHIN, SOA

टूक-टूक हो जाते हैं सारे अक्षर
तीन अक्षरों के बाद
भटक जाता है राह उच्चारण
झूठ समझते हो ना
जिससे चाहो पूछ लो।
लेकिन बुझी नहीं
हूँ यहीं बिलकुल
जैसी थी जनम से
ठीक वैसी ही।

ऊँची आवाज़ में
बता नहीं पाती अपना नाम
भीड़ में
धकिया कर बढ़ा नहीं पाती
अपना नाम
सबसे अगली क़तार में
पीछे से।

सोने, चाँदी के सिंहासन पर
थाप देने को अपना नाम
अटपटा लगता है
"मेरे गीत-सा गीत नहीं"
कहने को पलटती नहीं जीभ
अधमरी, अधसूखी
पंक्तियाँ, ध्वनियाँ
बढ़ा देती हैं मेरी ओर
अपने करुण रक्तहीन हाथ
ठीक बीमार शिशु की तरह
गोद में आने को
तभी
अपने स्वरों का मामूलीपन
समझ लेती हूँ मैं।

Digitized by PPRACHIN, SOA

इसके बावजूद
ढूँढ़ने की गरज हो तो
ढूँढ़ो,
जहाँ-तहाँ नहीं
स्नेह और आँसुओं से गूँजती
मेरी ही क़तार में।

Digitized by PPRACHIN, SOA

चित्रकार

झुटपुटे में
खुली नदी के निस्तब्ध पारे में
कौन है जो देख रहा है चेहरा?
नीलहंस
या बादलों-भरा आकाश...?

ताक-ताक चित्रों की
अदृश्य दुनिया में
ढूँढ़ नहीं पा रहा कवि कोई चित्र
अस्त-व्यस्त हो,
चुनता था फेंक देता था
ताँबई क्षितिज से
आओ-आओ की पुकार किसकी
टकराकर हवा की पीठ से
टूट जाती थी झनझनाकर
टुकड़े बिखर जाते चारों ओर
चित्र कहाँ है? कहाँ है चित्र?

फूलनखरा झील के बीच
लाल कुमुदिनी
मुस्कुरा रही थी होंठ दबाए
कह रही थी, नहीं
नहीं बना पाए तुम।

Digitized by PPRACHIN, SOA

चित्रकार
तेरी अजीब कूची को
स्थविरता छू जाती है तभी
तेरे लाजवाब आईने में
ज़रा-भी जाला जो नहीं लगता
इसीलिए मुझे चिढ़ा रहे हो, ना?

परिहास के आँसुओं से यदि
घुल जाए नदी का किनारा
कभी-कभार की उसाँसों से
फट जाए यदि छाती
रंग-रस झिलमिला उठें तो
चमक उठेगी कूची,
तेरे ही आईने को
टाँगकर आसमान की दीवार पर
कौन जाने
मैं बैठ नहीं जाऊँगी
विशाल कैनवस के
आमने-सामने
ठीक तुम्हारी जगह?

Digitized by PPRACHIN, SOA

मामूली-सी बात

वाणी विहार* से कॉलेज** चौराहे तक
सारा का सारा आकाश
क्या गूँगा हो गया है
बस की खिड़की से झाँककर
पुकार नहीं सकता था
मेरा नाम...
दिखा नहीं सकता था इशारे से
अपने
तिलस्मी महल का
खुला द्वार!

उसके बाद
मेरे
दो अजीब डैने निकल जाना
और बस से निकलकर
मेरा उड़ जाना
मामूली बातें थीं।

पर उसने तो गूँगे-सा
टीन के टुकड़े-सा

---

* भुवनेश्वर स्थित उत्कल विश्वविद्यालय।

** कटक का रेवेंशा कॉलेज

Digitized by PPRACHIN, SOA

मानो पहचाना ही नहीं कभी
मेरे सपनों को...

रोज़-रोज़ के विषाद
इतने अनजान लगते हैं कि
लगता है
विषाद न कभी था
न आज है
मेरा तो गहरा रिश्ता नहीं था किसी से
रिश्ता न हो तो
तुम्हारा
स्नेह कहाँ, शोक कहाँ?

बारिश
मेरा हाथ थामकर
खींच नहीं ले जाती है
मुझे
अपने टुपुर-टापर साम्राज्य में
पूछती नहीं
किसकी राह तक रही हो...
उसके बाद तो मुझे
खुल जाना, फूट पड़ना होगा
बारिश की तरह, सिसकियों की तरह
पके बेर के गुच्छे की तरह...
नीड़ में लौटती चिड़ियाँ
मेरे कंधे की टोकरी से
बेर या कीड़े
नहीं झपट लेतीं
क्या उन्हें शक है?
जानती हैं
मेरी योजना
मंत्र से उन्हें

Digitized by PPRACHIN, SOA

आकाश मार्ग में स्थिर करने की
उसी योजना की ओट में
होती है मेरी हँसी रुलाई
न जाने कितनी बार!

पंक्ति-पंक्ति चिड़िया कभी
कुआखाई नदी की धार-सी
भर गई थीं
मेरे आँगन में
और पेड़ पर चढ़कर
पसीने से तर-ब-तर मैं
तोड़ लाई थी
अँजुली भर तारे।
उसके बाद तो फानूस की तरह
सजाने लगी
सारी राह
जहाँ जितना भी अँधेरा था
उस अँधेरे के साम्राज्य और
कोलाहल को
नज़रअंदाज़ कर।

Digitized by PPRACHIN, SOA

साक्षी

मूसलाधार बारिश में भी
कहीं न कहीं
फट पड़ती है सूखी धरती
प्यास से तड़पकर
लौट जाता है अतिथि
नहीं होता पानी बूँद भर।

हवा के सिंहासन पर सवार
शून्य की ओर बढ़ती रानी के
काठ-मुकुट पर
ज़री की लकीर तक नहीं दिखती कहीं
छाती में कीचड़, झाड़ी, अँधेरा
केंचुआ, जोंक भरे हैं लबालब
पर, पारिजात की सुगंध से
गमक उठता है चारों ओर।

बादलों के पहाड़ से
फूट पड़ता है प्रताप सूर्यालोक का
शाल वन में
झड़े पत्तों के पलंग पर
सोई होती है धूप-छाँव
मिट्टी तोड़कर निकल आती है
व्याकुल आवाज़ किसी की

Digitized by PPRACHIN, SOA

"मत जाओ।"

देखी है ज़मीन
सूर्यालोक नहीं पड़ा जहाँ
कभी
चहका नहीं कभी
कदंब का सपना
है कहीं वित्ताभर ज़मीन
भीगी नहीं जो कभी
बावजूद इतनी बारिश के?

मैं साक्षी हूँ यहाँ
पत्थर भी बन चुकी हूँ यहाँ....।

इतने प्यार
इतने समर्पण के बावजूद
पिघला नहीं जो हृदय
काँपे नहीं जो होंठ
नाच नहीं उठा जो रक्त
मैं तो साक्षी हूँ उसकी
साक्षी हूँ निष्ठुरता की
उत्कीर्ण हैं मुझमें
न जाने कितने टेढ़े-मेढ़े अक्षर
पश्चात्ताप के।

Digitized by PPRACHIN, SOA

सबकुछ चाहकर

वुला क्यों लाए?
क्या कुछ नहीं देखा मैंने...

मुस्कान के पीछे का अहंकार
कृपण का ले-लो भरा चीत्कार
कीचड़-रंगी अँधेरे में
डूबे घोंघे का
वड़प्पन,
मुकुट की चमक के पीछे
कितनी छटपटाहट, कितने आयोजन
अपने झूठेपन के सिवा
भला हैं क्या ये सव?

आजकल तो
धड़कनों के आसपास
महसूस करती हूँ एक पत्थर
जो वड़ी आसानी से
हो सकता है एक कसौटी
हो सकता है कोई अस्त्र
हो भी सकता है
अथाह ताज़गी के वीच
कोई निष्ठुर, अचल पत्थर।

Digitized by PPRACHIN, SOA

क्षण में माफ़ करती हूँ
तो अगले ही क्षण
माफ़ नहीं कर पाती
ख़ुद को
इस लौटती धूप का
नदी किनारे आहिस्ता छिप जाना,
सारी रात पत्ते झड़ना
पेड़ से,
नक्षत्र की प्रचुर सुगंध
कौंध जाना आत्मा में,
पश्चात्ताप के खुले पंजे के आगे
रुक जाएगी धड़कन,
सबकुछ खो चुके
इंसान की उसाँसों की
प्रतिध्वनियों के सिवा
आख़िर हैं क्या ये सब?

क्यों बुला लाए?
ख़ुद को माफ़ करूँ
या न करूँ
मुझे तो लौट जाना होगा
इसी वक़्त
इस धूप, नदी, झड़ते पत्ते
सुगंध, पश्चात्ताप, नक्षत्र
इन सबको चाहते हुए
मुझे तो
मर जाना होगा इसी वक़्त...।

Digitized by PPRACHIN, SOA

तो फिर लौट चलें

लौट चलें कहते हो,
उस नदी किनारे?
घने कुहासे ने
ढँक दिया होगा
इस पार, उस पार
पानी पर कुहासा
लिपटा होगा कलमी लता-सा
सारा कुछ होगा सरावोर रहस्य से
ठीक आत्मा की तरह।

कुहासे पर तिरछी पड़ी
झिझक भरी एक लकीर
मैं,
तुम
मेरे अंदर काँपती ऊष्मा हो
किस सुबह
किस महादेश में
जाकर रुकेंगे हम?

नए फागुन में धूल का घर वनाएँगे
आम के वौर से
मुकुट तुम्हारा, मेरा अलंकार
अर्थ के, यश के

Digitized by PPRACHIN, SOA

चौंधियाते शवों पर पैर रखेंगे
पृथ्वी के चेहरे पर
कुछ लकीरें
आँक दे यदि सूर्य
किशोरी नक्षत्र की हरियाली को
चलो छींट दे चारों ओर...
पृथ्वी की अँधेरी सुरंग से
मुक्त कर दें मनुष्य को
उसके सपनों की समाधि पर
छुआ दें जादुई छड़ी...।

ईश्वरीय इच्छा के पंखों पर सवार हो
अविराम घूमते नक्षत्रों को
उत्ताल झरने की
मुखर सेज पर
बुला लाएँगे,
लाखों चिड़ियों को दाना चुगाएँगे,
तो फिर चलो, लौट चलें।

बीच खेत में
खड़े-खड़े विला जाते
कुहासे को
पीछे छोड़कर बढ़ जाएँगे
प्राणियों के
बँटवारा करते दुःख से
एक बड़ा हिस्सा उठा ले जाएँगे
भोगते रहेंगे........।

Digitized by PPRACHIN, SOA

हिन्दी में प्रकाशित पुरस्कृत कविता संग्रह

अनुनय (गुजराती)
कवि : जयंत पाठक, अनु. व्रजेन्द्र त्रिपाठी

अय्यप्प पणिक्कर की कविताएँ (मलयाळम्)
अनु. रति सक्सेना

आकाश-सा सघन (ओड़िया)
कवि : सौरीन्द्र बारिक, अनु. वनमाली दास

आह्निक (ओड़िया)
कवि : जगन्नाथ प्रसाद दास, अनु. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

उनींदा वर्तमान (पंजाबी)
कवि एवं अनु. मंजीत टिवाणा

ख़्वाब का दर बंद है (उर्दू)
कवि : शहरयार, अनु. अब्दुस्समद

चाहे जितनी दूर जाऊँ (बाङ्ला)
कवि : सुभाष मुखोपाध्याय, अनु. रणजीत साहा

चौथा आसमान (उर्दू)
कवि : मोहम्मद अल्वी, लिप्यंतर : शीन काफ़ निज़ाम

जीवनानंद दास : श्रेष्ठ कविताएँ (बाङ्ला)
कवि : जीवनानंद दास, अनु. समीरवरण नंदी

देह के दो मौसम (अंग्रेज़ी)
कवि : शिव के. कुमार, अनु. नूर नबी अब्बासी

द्वा सुपर्णा (ओड़िया)
कवि : सौभाग्य कुमार मिश्र., अनु. भगवान त्रिपाठी

नंगा राजा (बाङ्ला)
कवि : नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, अनु. सिद्धेश

Digitized by PPRACHIN, SOA

न धूप न छाया (पंजाबी)
कवि एवं अनु. हरभजन सिंह

निशांत की चिड़िया (मैथिली)
कवि : जीवकांत, अनु. केदार कानन, नारायण जी

पब्बी (पंजाबी)
कवि : प्रभजोत कौर, अनु. शशि सहगल

परिन्दों भरा आसमान (उर्दू)
कवि एवं लिप्यंतरकर्ता : बलराज कोमल

पागी (राजस्थानी)
कवि : चंद्रप्रकाश देवल, अनु. कैलाश कबीर

पिछले मौसम का फूल (उर्दू)
कवि एवं अनु. मज़हर इमाम

बोल भारमली (राजस्थानी)
कवि : सत्यप्रकाश जोशी, अनु. कुसुम माथुर

मेरी कविता : मेरे गीत (डोगरी)
कवि एवं अनु. : पद्मा सचदेव

मेरे सांईयाँ जीओ (पंजाबी)
कवि : भाई वीर सिंह, अनु. शशि सहगल

लीलटाँस (राजस्थानी)
कवि : कन्हैयालाल सेठिया, अनु. गुलाब भाटी

शब्दों का आकाश (ओड़िया)
कवि : सीताकांत महापात्र, अनु. राधाकांत मिश्र

सलाम (मराठी)
कवि : मंगेश पडगाँवकर, अनु. : वसंत देव

हिपोक्रिट चाँप-गुराँस और अन्य कविता (नेपाली)
कवि : गिर्मी सेर्पा, अनु. विर्ख खड़का डुवर्सेली

Digitized by PPRACHIN, SOA

तन्मय धूलि साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत इसी नाम के ओड़िया कविता-संग्रह का हिन्दी अनुवाद है। इस संग्रह में छत्तीस कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं में एक सुस्पष्ट काव्यात्मक दृष्टि और 'स्व' की तलाश दिखाई पड़ती है। यहाँ प्रभावशाली बिम्ब योजना के माध्यम से वैयक्तिक निरर्थकता को स्वर दिया गया है। यह कृति अनलंकृत होने के बावजूद अपनी आध्यात्मिक विषयवस्तु और सरल-सहज संप्रेषण के कारण महत्त्वपूर्ण है।

तन्मय धूलि की समर्थ कवयित्री प्रतिभा शतपथी का जन्म कटक, ओड़िशा में 1945 में हुआ। उन्होंने ओड़िया भाषा एवं साहित्य में एम.ए. और पी-एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। ओड़िया के अतिरिक्त उन्हें अंग्रेज़ी, हिन्दी और बाङ्ला भाषाओं का ज्ञान है। 1968 से वे ओड़िशा के विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन करती रही हैं और इस समय रामदेवी महाविद्यालय में ओड़िया की प्रोफ़ेसर और विभागाध्यक्ष हैं। उन्होंने पंद्रह वर्ष की वय में लेखन शुरू कर दिया था और साहित्यिक पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगी थीं। उनके दस कविता-संग्रह, साहित्यिक समालोचना एवं निबंध की पाँच कृतियाँ और सात अनुवाद प्रकाशित हैं। उनके दो कविता-संग्रहों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। अपने साहित्यिक अवदान के लिए उन्हें विसुव पुरस्कार, राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार, सारळा पुरस्कार, शाश्वती राष्ट्रीय पुरस्कार तथा साहित्य अकादेमी पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कार-सम्मान प्राप्त हो चुके हैं।

प्रस्तुत कृति के अनुवादक **राजेन्द्र प्रसाद मिश्र** (जन्म : 1955, मयूरभंज, ओड़िशा) हिन्दी भाषा और साहित्य में एम.ए. तथा पी-एच.डी. हैं। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, भारतीय अनुवाद परिषद, भारतीय भाषा परिषद के पुरस्कारों सहित साहित्य अकादेमी अनुवाद पुरस्कार प्राप्त डॉ. मिश्र ओड़िया साहित्य के समर्थ अनुवादक हैं। आपने 50 से अधिक कृतियों के हिन्दी अनुवाद किए हैं।

ISBN : 81-260-1902-6

मूल्य : 50 रुपये

Digitized by PPRACHIN, SOA